इकाई 12 पूंजीवाद का संकट

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 पूंजीवाद और संकट

12.3 द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व के संकट

12.4 युद्धोत्तर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संकट

12.4.1 युद्ध के तात्कालिक परिणाम

12.4.2 स्वर्णिम वर्ष

12.4.3 संकट के वर्ष

12.5 भूमण्डलीकरण और उसका असंतोष एवं विरोधाभास

12.6 सारांश

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

- युद्ध एवं पूंजीवाद के बीच संबंध की व्याख्या कर सकेंगे;
- पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्निहित संकटों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- द्वितीय विश्व युद्ध से लेकर बीसवीं शताब्दी के अन्त तक उछाल तथा मंदी के अलग. अलग चरणों की व्याख्या कर सकेंगे; और
- पूंजीवाद के संकट के समाधान के तरीकों के रूप में भूमण्डलीकरण नीतियों पर चर्चा कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाइयों में आपने देखा कि पूंजीवादी औद्योगिकरण दो बड़ी आर्थिक मंदी के कालों से गुजरा था, जो अर्थव्यवस्था के सबसे बड़े दो मंदी के काल थे, पहला 1873 से शुरू होकर 1879 तक चला, तथा दूसरी महामंदी जो कि द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ से पहले के दशक में थी, इसका प्रभाव विश्व पर पड़ा था। इस महामंदी का समय तथा अवधि अलग-अलग देशों में अलग-अलग थी परन्तु ज्यादातर देशों में यह 1930 के दशक में शुरू हुई थी तथा 1940 के दशक के मध्य तक समाप्त हुई थी। अगर वर्षों से गिने तो दूसरी मंदी पहली की अपेक्षा लम्बी थी। पहली मंदी को "पहले अन्तर्राष्ट्रीय संकट" के रूप में स्वीकार किया गया था जिसके पश्चात् एक अन्तराल में अर्थव्यवस्था ने विकास किया था और दूसरी मंदी की ओर बढ़ना आरम्भ किया था तत्पश्चात् यह समझा जाने लगा की पूंजीवाद के साथ समय-समय पर आवधिक संकट आते रहते हैं क्योंकि इस व्यवस्था में विरोधाभास अन्तर्निहित होते हैं।

पूंजीवाद के संकट के आर्थिक तथा राजनीतिक दोनों आयाम हैं जो सहज तरीके से जुड़े हुए हैं। हम दोनों विश्वयुद्धों की पृष्ठभूमि को तब तक नहीं समझ सकते जब तक यह नहीं समझते कि उस समय की अर्थव्यवस्था में क्या हो रहा था न ही बीसवीं शताब्दी के राजनीतिक प्रतिछेदन (intersections) को बिना ध्यान में रखे हुए उस काल की आर्थिक रणनीतियों की व्याख्या कर सकते हैं। उपनिवेशवाद, कृषकों के निवार्सन तथा छोटे उत्पादकों को हटा देने में पूंजीवाद ने बड़ी भूमिका अदा की थी। पूंजी तथा लाभ की निरंतर आवश्यकता पूंजीपत्तियों और राष्ट्र राज्यों को थी। इससे ये निश्चित हो गया कि राजनीतिक संघर्ष तथा पूंजीवादी संकट लगभग एक ही समय पर हुए तथा राजनीतिक समाधानों का लक्ष्य इन संकटों को हल करना था। इन संकटों के समाधान के तरीकों का झुकाव पूंजीवादी उदारवादी राजनीतिक व्यवस्था की रक्षा करना था।

अन्य शब्दों में पूंजीवादी संकटों के कारणों के राजनीतिक, वित्तिय तथा सामाजिक आयाम थे और उनमें से कोई एक विशेष आयाम किसी विशेष काल में अधिक महत्वपूर्ण हो जाता था। 1873 के वर्षों में बाद के मंदी के काल में अर्थव्यवस्था का संकट प्रथम विश्वयुद्ध का एक प्रमुख कारक बना था। इस युद्ध में प्रभावशाली साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा विश्वअर्थव्यवस्था की पुनर्संरचना का प्रयास हुआ तथा प्रत्येक ने अपने विकास की गति को बढ़ाने के लिए विभिन्न महाद्वीपों में अपना प्रभाव बढ़ाने व प्रभुत्व कायम करने की कोशिश की थी। वास्तविक रूप में यह बाजार पर नियंत्रण, पूंजीनिवेश के मार्ग खोजने तथा सस्ते कच्चे माल के समान की खरीद के प्रयास थे। विश्व युद्ध के बाद की अर्थव्यवस्था तथा राजनीति दोनों विजयी राष्ट्रों इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका के हित में पुर्नगठित की गई थी जिसने देर से आने वाले हितधारक के रूप में अपनी भूमिका का दावा किया। 1930 की मंदी के साथ इटली तथा जर्मनी का असंतोष द्वितीय विश्व युद्ध के टकराव का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्‌दा बना था।

इन दोनों विश्व भर की आर्थिक मंदियों के अनुभव तथा दो विश्वयुद्ध उस ऐतिहासिक पृष्टभूमि का आधार कैसे बनते हैं जो युद्धोत्तर विश्व में पूँजीवाद में पनपे तथा यह भी देखना कि उनका समाधान कैसे हुआ। यह सभी इस इकाई का हमारा केन्द्र बिन्दु होगा।

12.2 पूंजीवाद और संकट

पूंजीवादी व्यवस्था में आन्तरिक विरोधाभासों के कारण इसमें हमेशा संकटों की संभावना बनी रहती है। पूंजीवाद की शुरुआत उत्पादन से लाभ प्राप्त करने के लिए होती है, न कि उपयोग के लिए, साधारणतः बिना लाभ की प्रेरणा के कोई पूंजीपति उत्पादन नहीं करता है। दूसरी तरफ समाज के एक अन्य वर्गों का पूंजीपति के व्यक्तिगत लाभ से कोई सरोकार नहीं होता है। उनकी आवश्यकताएं एवं प्रेरणाएं अलग व बहुल होती हैं। पूंजीवादी समाज में किसी विशिष्ट राजनीतिक उतार-चढाव के समय के अतिरिक्त पूंजीपति ही अधिकांश निर्णय लेते हैं और आर्थिक एवं राजनीतिक निर्णयों को अपने पक्ष में करवा लेते हैं। उन्हीं का हित साधारणतः अपने पक्ष में सभी निर्णय लेने के लिए राजनीतिक निर्णयों को आकार देकर प्रभावित करते हैं। मतदान आधारित राजनीतिक व्यवस्थाओं में भी यही प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत भी प्रत्येक पूंजीपति अपने स्वतंत्र निर्णय लेता है जो उसके संसाधनों के आधिपत्य तथा जानकारी के तर्क के अनुरूप होते हैं। बड़ी संख्या में निर्णय स्वतंत्र व्यक्तिगत निर्णय अनेकों अन्य निर्णयों के साथ समन्वय कर भी सकते हैं और नहीं भी। पूरी व्यवस्था में समन्वय और योजना की कमी होती है जिसके कारण असंतुलन तथा अशान्ति उत्पन हो जाती है।

इसके अतिरिक्त वहां पर अपरिवर्तनीय विरोधाभास होते हैं, जो कि उपयोग आवश्यकता और लाभ की जरूरत के बीच होते हैं। इस व्यवस्था में भूखमरी तथा अभावों का उपलब्धता से कोई सम्बंध नहीं होता है। बाजार खाद्य पदार्थों से और अन्य माल से भरे होते हैं, परन्तु इन भरे हुए बाजारों से लोगों को भूखा लौटना पड़ता है क्योंकि उनके पास क्रय शक्ति का अभव होता है। एक पूंजीपति लाभ प्राप्त करने के लिए सामान बेचता है परन्तु लोगों को खरीदने के लिए पैसा चाहिए। पूंजीपति अपना लाभ ओर अधिक बढ़ाने के लिए मजदूरी घटा देता है, इस कारण लोगों की क्रय क्षमता कम हो जाती है और पूंजीपति उतनी बिक्री नहीं कर पाता है जितनी वह करना चाहता है। इस कारण अतिउत्पादन की स्थिति पैदा होती है जिसमें उत्पादों की बिक्री नहीं होती क्योंकि लोगों की क्रय शक्ति कम होती है और उपभोग कम हो जाता है। यह स्थिति पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में संकट पैदा कर देती है।

इसी प्रकार पूंजीपति उन वस्तुओं का उत्पादन करने में रुचि रखते हैं जो अमीरों द्वारा खरीदी जाती है वे वह नहीं पैदा करते जिसकी बहुसंख्यक समाज को आवश्यकता होती है और खरीद सकने में सक्षम होते हैं। उदाहरण के लिए कई प्रकार के दंतमंजन, ब्रश तथा शैम्पू बनाए जाते हैं, यह अनावश्यक रूप से एक ही ब्राण्ड के शम्पू में एक बालों को झड़ने से रोकने, दूसरा रूसी रोधी, तीसरा पोषण तथा चमकीले बालों के लिए बनाया जाता है। उसी प्रकार जहां ज्यादा अमीर लोगों के लिए उन्नत तथा बड़े आकार के टेलिविजन बनाए जाते हैं। ज्यादातर लोगों की क्रय क्षमता व आवश्यकता के अनुसार उत्पादन नहीं किया जाता है।

संकट का कारण तकनीकी असन्तुलन भी हो सकता है। जिससे एक दिशा में प्रगति हो और दूसरी तरफ न हो। जिस कारण एक प्रक्रिया तेज तथा सस्ती तथा दूसरी प्रक्रिया धीमी तथा मंहगी होगी। इसके अलावा अर्थव्यवस्था में आई विकृतियों का कारण राजनीतिक निर्णय, मतभेद, मंदी, युद्ध वित्तिय निर्णय आदि हो सकते है जिनका अर्थव्यवस्था विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के वृहद रूप से अनियोजित प्रकृति और हितों में अंतर्विरोध के कारण और प्रमुख अभिप्रेरणा लाभ होने के कारण यह हमेशा संकट की ओर प्रवृत होती है। हांलाकि हर संकट के तात्कालिक कारण अलग-अलग होते हैं जिनको देखने की आवश्यकता होती है।

12.3 द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व के संकट

पूंजीवाद का संकट दो विश्व युद्धों के मध्य प्रमुखतः अर्थव्यवस्थाओं में गिरावट के कारण आया था जो लगभग एक दशक तक चलता रहा था। इस स्थिति का प्रमुखतः उन्नत देशों की आर्थिक तथा राजनीति के साथ पूरे विश्व पर विचारणीय प्रभाव पड़ा था। यह अमेरिका से आरम्भ हुआ था जो प्रथम विश्व युद्ध में अग्रणीय पूंजीवादी देश था तथा इसका अन्त 1929 से 1939 तक चला। कुछ देशों में तो यह 1940 के दशक तक रहा। इसका पहला झटका वॉल स्ट्रीट शेयर बाजार न्यूयॉर्क में महसूस किया गया जब बहुत से निवेशक समाप्त हो गए। इसका परिणाम उपभोक्ता व्यय के अभाव तथा निवेश, औद्योगिक उत्पादनों में कमी के रूप में पड़ा, जिसका परिणाम बाजार में मांग कम होने तथा अन्त में कम्पनियों द्वारा की गई छंटनी के कारण वृहद बेरोजगारी के रूप में आया था। 1933 तक आते-आते 13 से 15 मिलियन अमेरिकी लोग बेरोजगार हो गए थे तथा आधे के करीब बैंक बन्द हो गए थे। जो व्यक्ति काम कर रहे थे उनके वेतनों में भारी कमी आ गई थी। प्रमुख अग्रणी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के धराशायी होने का प्रभाव यूरोपीय महाद्वीपीय अर्थव्यवस्थाओं पर पड़ा था। अमेरिका प्रथमविश्व युद्ध में सबसे कम प्रभावित था, विनिर्मित माल का सबसे

बड़ा आयातक और निर्यातक देश था। इस समस्या का कारण अमेरिका का सबसे बड़ा निवेशक देश होना भी था।

यह घरेलू तथा वैश्विक परिस्थितियों का सम्मिलित प्रभाव था जो महान मंदी की जोर ले गया। क्योंकि अन्तर्संबधिता तथा अन्तर्निर्भरता पूंजीवादी विश्व अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता थी, इसलिए इसके प्रभाव राष्ट्रराज्यों के पार जाने स्वाभाविक थे। उदाहरण के लिए जर्मनी में युद्ध से तबाही तथा क्षतिपूर्ति के द्वारा मुश्किल परिस्थिति से निपटने के लिए अमेरिकी ऋण तथा भुगतान के द्वारा क्षतिपूर्ति तथा आर्थिक पुनर्निमार्ण किया गया था। इसलिए, 1929 में अमेरिका के आर्थिक संकट का जर्मनी पर तात्कालिक प्रभाव पड़ा था। जर्मन सरकार द्वारा इसके प्रतिउत्तर में सार्वजनिक खर्चों में कमी की गई जिससे वहां की परिस्थितियाँ और बदतर हो गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि बाजार सिकुड गया, उत्पादन में गिरावट आई, व्यापक बेरोजगारी तथा व्यापार में असफलताएँ आई थी। 1931 में जर्मनी के बैंकों के धराशायी होने के कारण वे 1932 में क्षतिपूर्ति का भुगतान करने में असफल हो गए। दो वर्ष पश्चात् ब्रिटेन तथा फ्रांस भी युद्ध के वे ऋण पूरा करने में असफल रहे जो उन्होंने अमेरिका से लिए थे। इसने ऐसा संकट पैदा किया जो आर्थिक होने के साथ-साथ सामाजिक भी था। लोगों का जीवन बेहाल हो गया, भूखमरी, अभावग्रस्तता की कसौटी बन गई थी बेघरी और अपराध बढ़ गए।

सामाजिक लोकतान्त्रिक सरकारों के प्रयासों के लिए बहुत छोटी सी गुंजाइश बची थी। यह कहा जाता है कि मंदी तथा जन असंतोष यूरोप में फासीवादी पार्टियों के उदय का प्रमुख कारण थे। क्रोधित तथा अपमानित जर्मन नागरिकों ने आक्रमक राजनीतिक कार्यक्रमों को सहयोग देना शुरू कर दिया था। इटली भी प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् स्वयं को वंचित महसूस कर रहा था। पूरे यूरोप में आक्रमक राष्ट्रवादियों द्वारा अपनी आवश्यकता के अनुरूप अर्थव्यवस्था की पुनःसंरचना की इच्छा ने दोबारा अन्तिम समाधान के रूप में युद्ध को जन्म दिया था।

राज्य के द्वारा युद्ध संबंधित मांग जिसमें हर प्रकार के हथियार, हर प्रकार की चीजों की आपूर्ति, परिवहन तथा आधारभूत संरचना शामिल थी उसने एक बार फिर से उत्पादन और बाजार को पुनर्जीवित कर दिया जिसने पूंजीपतियों के लाभ को असामान्य रूप से बढ़ा दिया। इसके विस्तार के पैमाने का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विश्वस्तरीय युद्ध का विस्तार, जिसमें उपनिवेश भी चाहे अनचाहे रूप से शामिल थे पूंजीवादी तथा साम्राज्यवादी हितों के लिए मानवीय तथा भौतिक संसाधनों का जम कर प्रयोग किया गया था।

यद्यपि युद्ध के दुष्प्रभाव के परिणामस्वरूप और भी विनाश दुःख, तथा विस्थापन हुआ जिसके लिए युद्ध में तबाह हुए शहरों के पुनर्निर्माण की आवश्यकता हुई। पूंजीवाद तथा उसके संकट के उतार-चढ़ाव को समझने के लिए इस पूरी प्रक्रिया का समझना जरूरी है। यह मामला और पेचीदा हो जाता है क्योंकि युद्ध में सभी उद्योग पुनर्जीवित नहीं हो पाए।

सोवियत संघ की नई समाजवादी व्यवस्था उत्पादन के साधनों पर राज्य के प्रभुत्व, कल्याणकारी आर्थिक नीतियों तथा योजनाओं के कारण इन अत्यंत महत्त्वपूर्ण वर्षों के संकट से मुक्त रही। वहाँ की वृद्धि दर बढ़ती रही तथा अधिकांश लोगों के जीवन स्तर में भी बढ़ोतरी हुई।

बोध प्रश्न 1

1) पूंजीवाद के संकट के उत्पन्न होने के कुछ कारणों की सूची बनाइयें।

....

....

....

....

....

2) द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने से पहले क्या हुआ था?

....

....

....

....

....

12.4 युद्धोत्तर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संकट

युद्धोत्तर अर्थव्यवस्था को सामान्यतः दो बड़े चरणों में विश्लेषित किया जाता है। "स्वर्णिम वर्ष" जब ज्यादातर यूरोपीय शक्तियों ने प्रयासों के द्वारा उन आर्थिक असफलताओं को सफलतापूर्वक दूर कर लिया था जो द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई थी। ये 1950 से 1970 तक चले। गिरावट तथा उसके लक्षण से जो कि 1970 की शुरूआत से 1989 तक चिन्हीत हुए समाजवादी राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं का धराशायी होना इसका प्रमुख परिणाम था। क्योंकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एक वैश्विक अर्थव्यवस्था है इसलिए उतार-चढाव भी सभी राष्ट्रों में संयोगवश एक साथ हुए थे। यद्यपि उनके स्तर व रूप पूर्ण रूप से समान नहीं थे। साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्वी तथा पूंजीवादी संकट भी एक दूसरे से मिल गए थे।

यद्यपि बहुत से उपनिवेश स्वतंत्र हो गए थे लेकिन फिर भी वो साम्राज्यवादी देशों के साथ वित्तिय सहायता के द्वारा इन शर्तों पर जुड़े रहे कि उनका सौभाग्य पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के साथ या उनका विकास या अविकास से जुड़ा है। इस प्रकार वे भी पूंजीवादी संकट से समान रूप से प्रभावित हुए थे। समाजवादी अर्थव्यवस्थाएं जो अपेक्षाकृत रूप से पूंजीवादी मंदी तथा बाजार के उतार-चढ़ाव बची हुई थी उन्हें भी अपनी अर्थव्यवस्थाओं में गंभीर समस्याओं का अनुभव हुआ उनकी चर्चा हम नीचे करेंगे।

12.4.1 युद्धों के तात्कालिक प्रभाव

अमेरिका को छोड़कर लगभग सभी पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं ने युद्ध के दुष्परिणामों का अनुभव किया था, अमेरिका ने युद्ध के बाद स्वयं को अनुकूल स्थिति में देखा। युद्ध के तात्कालिक प्रभाव के रूप में जो संकट पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के सामने आया वह ध्वस्त अर्थव्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण था। इसकी दूसरी समस्या समाजवादी विश्व के साथ भीषण प्रतियोगिता तथा होड़ थी। पूंजीवादी राष्ट्रों ने फासीवादी को हराने के लिए सोवियत संघ के साथ सहयोग किया था। इस क्षेत्र में सफलता के पश्चात् और जर्मन अर्थव्यवस्था समान रूप से ध्वस्त होने के बाद मुख्य आर्थिक विरोधाभास राजनीतिक क्षेत्र में समाजवादी वैकल्पिक अर्थव्यवस्था से था। यूरोप के अन्दर ही शक्ति संतुलन में परिवर्तन आ गया जिसके फलस्वरूप सोवियत संघ पूर्वी यूरोप की उस राजनीति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल रहा था, जिसने समाजवादी आर्थिक नीतियों को अपनाया था। ये वे महत्त्वपूर्ण कारक थे जिन्हें पूंजीवादी राष्ट्रों द्वारा युद्ध की जड़ता को समाप्त करने के नीतिगत कार्यवाइयों में अपनाया।

ये नीतियाँ अंतर्महाद्वीपीय स्तर की थी क्योंकि इसके पीछे कि सोच यह थी कि ऐसी पूंजीवादी व्यवस्था लाई जा सके जो विश्व के अधिक से अधिक देश अपनाएँ और पूर्व उपनिवेश समाजवादी विकल्प को न अपनाएँ।

जर्मनी को दो देशों - संघीय गणतन्त्र जर्मनी (FRG) तथा जर्मन लोकतान्त्रिक गणतन्त्र (GDR) में बांटने के निर्णय का अर्थ जर्मनी की युद्ध के कारण तबाह हुई कमजोर अर्थव्यवस्था के संसाधनों को भी दो भागों में बांटना था पहला जो पूंजीवादी प्रकृति का था तथा अमेरिका और पश्चिमी यूरोप के प्रभाव में थी तथा दूसरा समाजवादी जो कि सोवियत संघ के द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त कर रही थी।

यूरोपीय देश जो युद्ध में तबाह हो गए थे अब अमेरिका के आभारी थे क्योंकि वहीं केवल पूंजीअतिरेक देश था। विशुद्ध शब्दों में, यह "अमेरिकी शताब्दी" थी न केवल आर्थिक प्रभुत्व बल्कि राजनीतिक प्रभुत्व की दृष्टि से भी, क्योंकि यह आर्थिक शक्ति पर आधारित राजनीतिक वर्चस्व था। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अमेरिका विश्व के दो तिहाई औद्योगिक उत्पादन के लिए जिम्मेदार था।

ट्रूमैन सिद्धांत तथा मार्शल योजना द्वारा उपरोक्त प्रबन्ध एवं उद्देश्य रेखांकित किए गए जिसके आधार पर युद्ध में टूटी हुई अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण तथा विश्व के अधिकतर भाग पर अमेरिकी प्रभुत्व स्थापित करने को सुनिश्चित किया गया। मार्शल प्लान (अधिकारिक रूप से यूरोप के पुनरूथान का कार्यक्रम (ERP)) एक अमेरिकी पहल थी। यूरोप को द्वितीय विश्व युद्धोपरांत पुनर्निर्माण के लिए इसमें 17 बिलियन डालर (लगभग वर्तमान +160 बिलियन डालर मूल्य के बराबर) दिए गए।

युद्ध ने यूरोप तथा अमेरिका की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था दो अलग क्षेत्रों में विभाजित कर दिया था। एक पूर्ण रूप से सरकार द्वारा पैदा की गई मांग पर आधारित था जिसमें शस्त्रों का उत्पादन तथा युद्ध संबंधित आधारभूत संरचनात्मक आवश्यकताएं थी जिसमें अनाज अधिग्रहण भी शामिल था। दूसरा उपभोक्ता दैनिक आवश्यकताओं के उत्पादन और अन्य व्यापारों से संबंधित था। दूसरा क्षेत्र, युद्ध के दौरान संसाधनों से पूर्णतः वंचित तथा जड़ बना हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध का प्रभाव मांग तथा आर्थिक विकास को प्रेरित करने में मिश्रित था एवं उतना अच्छा नहीं था जितना सामान्यतः समझा जाता है। यह एक कृत्रिम मांग थी जो युद्ध के साथ समाप्त हो गई थी। कुल मिलाकर 1941 से 1943 तक वास्तविक सकल निजी घरेलू निवेश 64% तक गिर गया था; युद्ध के चार वर्षों के दौरान यह कभी भी 1941 के स्तर के 55% से अधिक नहीं रहा था।

युद्ध की समाप्ति के साथ प्रथम क्षेत्र (युद्ध की मांग जो सरकार द्वारा पैदा की गई थी) की आवश्यकता तात्कालिक भविष्य में नहीं थी और दूसरे क्षेत्र में मांग की कमी के कारण जड़ता थी यह संसाधनों के साथ-साथ जनता की क्रय क्षमता के अभाव के कारण था। दोनों क्षेत्र बाजार से वंचित थे इसलिए लाभ पाने में असफल थे। इसने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास को प्रभावित किया। सामान्य रूप से जीवन स्तर गिर गया जिससे सभी क्षेत्रों और वर्गों में असंतोष फैल गया था।

1945 से 1947 के पुन : प्राप्ति के प्रथम चरण में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा यूनाईटेड नेशंस रिलिफ एण्ड रिहेब्लिटेशन एंजेसी (UNRRA) के समझौते के तहत ऋण प्रदान किया गया था। सकल राष्ट्रीय उत्पादन (GNP) 1946 के बाद के वर्षों में 8% बढ़ गया था। औद्योगिक उत्पादन युद्ध पूर्व स्तर पर पहुंच गया था। पूंजीवादी यूरोप तथा अमेरिका से सहायता प्राप्त राजनीतिक तथा सैन्य गठबंधनों पर आधारित यह व्यवस्था निबार्ध रूप से पूंजीवादी विश्व में पूंजी और वस्तुओं के अप्रतिबंधित प्रवाह की मौद्रिक और व्यापारिक व्यवस्था थी।

पुनः प्राप्ति तथा पुनर्निर्माण का दूसरा चरण 1948-51 में पश्चिमी यूरोपीय देशों को अमेरिका के द्वारा प्रायोजित आर्थिक संरक्षण कार्यक्रम से 13 बिलियन डालर ऋण के रूप में प्राप्त हुआ था इसके अतिरिक्त एक बिलियन डालर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF) तथा विश्व बैंक से मिला। इन दोनों अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों की स्थापना अमेरिका द्वारा नियंत्रित पूंजीवादी विकास को प्रोत्साहित करने के लिए की गई थी। ज्यादातर वित्तीय सहायता ब्रिटेन, फ्रांस, इटली तथा पश्चिमी जर्मनी को दी गई थी। यह सभी निरन्तर रूप से अमेरिका के समर्थक रहे थे। ये ऋण शर्तों से भरे हुए थे। इन देशों को यूरोपीय आर्थिक सहयोग की संस्था को सहयोग करना था तथा हर चार वर्ष में एक राष्ट्रीय योजना का निर्माण करना होता था। इसके द्वारा उन शर्तों पर जो ऋण के साथ स्वीकार की गई थी (दी जाने वाली सहायता राशि की मात्रा के अनुरूप) उन संस्थाओं तथा अमेरिका के अनुसार प्रमाणित तरीके से ही उस सहायता राशि को खर्च किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त उन्हें खाद्य पदार्थों का आयात केवल अमेरिका से ही करने पर सहमत होना पड़ता था भले ही अन्य सस्ते विकल्प अन्य देशों में मौजूद थे। एक सहमति मूल्य के अनुसार उन देशों को अमेरिका के ही जहाजों, तथा बीमा सेवाओं का उपयोग करना पड़ता था। यद्यपि यह एक मुक्त अर्थव्यवस्था थी परन्तु उनमें सबसे प्रभुत्वशाली पूंजीवादियों को लाभ पहुंचाने के लिए बहुत से प्रतिबंध तथा नियंत्रण स्थापित किए गए थे।

1947 से 1951 के बीच में पश्चिमी यूरोपीय देशों के कुछ देशों में अपनी अर्थव्यवस्थाओं में राज्य द्वारा केनेशियन तरीके से हस्तक्षेप स्वीकार किया गया था। सोवियत संघ की योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की सफलता से सबक लेकर कई नीतियाँ बनाई इसमें अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे यातायात परिवहन, बैंकिंग तथा ऊर्जा क्षेत्रों का राष्ट्रीयकरण और राज्य द्वारा अर्थव्यवस्था का प्रबन्धन करना था। उन देशों में 1951 के बाद के वर्षों में वास्तविक पुन : प्राप्ति हुई तथा आर्थिक उछाल आया।

12.4.2 स्वर्णिम वर्ष (दी गोल्डन ईयर्स)

पुनः प्राप्ति का प्रमुख उद्देश्य यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण करना था साथ ही उस समय पूरे विश्व में कुछ विकास हुआ था। हालांकि विकास और समृद्धि की जो प्राप्ति पश्चिमी विश्व में 1951 से आरम्भ होकर 1970 के प्रारम्भ तक के बीच के वर्षों में हुई थी उसे स्वर्णिम वर्षों के रूप में जाना जाता है। इन दशकों में विकसित पूंजीवादी देश विश्व का तीन चौथाई (3/4) उत्पादन तथा 80% विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात के लिए जिम्मेवार थे । उस समय (1950-70 के बीच) विनिर्मित वस्तुओं का उत्पादन चौगुणा हो गया था। पूरे विश्व की दृष्टि से विश्व व्यापार दस गुणा बढ़ गया था। पूंजीवाद आगे बढ़ रहा था तथा यह समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं से अच्छी प्रतियोगिता कर रहा था। खाद्य पदार्थो के उत्पादन से इतनी तीव्र गति से वृद्धि हो रही थी जो मांग से अधिक था और उन्हें अपना उत्पादन अलाभकारी दर पर छोड़ देना करना पड़ रहा था।

इस उत्पादन स्तर को किस प्रकार प्राप्त किया गया था? तथा इस विकास काल की क्या प्रमुख विशेषताए थी? पहला कारण शोध तथा विकास (R-D) क्षेत्र में आशातीत निवेश और तकनीकी के तर्कसंगत विकास के द्वारा पूंजी में गहन वृद्धि से उद्योगों को अधिक लाभ मिलना संभव हुआ था। फॉर्ड माडल के फैलाव तथा पुरानी तकनीकी जो अब विकसित देशों में अप्रचलित हो गई थी, उन्हें विकासशील देशों में उसके आयातक मिल गए थे जो इन देशों की औद्योगिक वृद्धि को ऊर्जा प्रदान कर सकते थे। दूसरा, इस काल में पूंजीवाद की पुनर्सरचना तथा पराराष्ट्रीय कम्पनियों की उत्पत्ति हुई, जो विकसित पूंजीवादी विश्व में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के रूप में विकसित हुई थी। हॉब्सबॉम (Hobsbawm) के अनुसार 85% बड़ी 200 कम्पनियाँ मूलतः अमेरिका, जापान, ब्रिटेन तथा जर्मनी की थी। इसके साथ अन्य कम्पनियाँ शेष विश्व के ग्यारह देशों की थी। ये कम्पनियाँ स्वयं में अपने राष्ट्र

राज्य के अनुरूप निवेश तथा लाभ प्राप्त करने के निर्णय लेने के लिए बाध्य नहीं थी। इसमें तीसरी विशेषता यह थी कि इस काल में समुद्रपार वित्त (off shore finance) के कारण उद्योगों का स्थानातंरण कम श्रम मूल्य वाले क्षेत्रों में होने लगा था। चौथा, व्यापार में एक नई श्रम विभाजन की उत्पत्ति हुई जिसमें उन्नत पूंजीवादी देश विनिर्माता बन गए तथा विकासशील देश कच्चे माल की आपूर्ति तथा कृषि उत्पादन करते थे। विकासशील देश पश्चिमी देशों को पूरे वर्ष उष्णकटिबंधीय फल तथा सब्जियाँ उपलब्ध करवाते थे जो उनकी जलवायु में सम्भव नहीं था। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन पूंजीवादी विकसित देशों के अनुकूल था। पांचवां, अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों में राज्य की मदद के कारण वृद्धि जारी थी यह आधारभूत संरचना के क्षेत्र यातायात तथा बैंकिंग में था। यद्यपि व्यापार में उदारीकरण में राज्य की भूमिका इन प्रमुख क्षेत्रों के संलग्नक की थी। रेलवे, कोयला, स्टील के राष्ट्रीयकरण ने पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, इग्लैण्ड, इटली तथा बैल्जियम की अर्थव्यवस्थाओं के विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। इटली सरकार के पास वास्तव में 30% उद्योगों का स्वामित्व था।

आर्थिक वृद्धि के अलावा इन उन्नत पूंजीवादी देशों ने अपने नागरिकों की भलाई के लिए उनकी क्रय शक्ति में वृद्धि की ताकि वे देश के उद्योगों के उत्पादों को खरीद सकें। इसे प्राप्त करने के लिए कल्याणकारी राज्य व्यवस्था को अपनाया गया था जिससे समाजवादी देशों के विषय में इस बढ़ती जागरूकता को हटाया जा सके कि उन देशों में नागरिकों के कल्याण के अधिक बेहतर मापदण्ड अपनाए गए थे। सरकार द्वारा स्वास्थ्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में खर्च बढ़ाया गया जिसमें नागरिकों कि क्रय शक्ति बढ़े और वे ग्राहक बन सकें। इस प्रकार बढ़ते हुए इन देशों के नागरिक खाने पर कम खर्च करने लगे, मंहगी तथा विलासिता की वस्तुओं और मनोरंजन पर अधिक खर्च करने लगे थे जो लोगों के अच्छे जीवन स्तर व समृद्धि की भावना को दर्शाती है।

12.4.3 संकट के वर्ष

यह समृद्धि 1970 के दशक में क्यों जारी नहीं रही और कैसे यह पुनः पूंजीवाद के संकट में बदल गई? हाब्सबाम के मत के अनुसार पूंजीवाद में आन्तरिक विरोधाभास है जो हमने पहली इकाई में पढ़े हैं। एक गहन पूंजी-गहन उद्योग में द्रुतगति से विकास हेतु ज्यादा तकनीकी का प्रयोग होता है जिससे श्रम की आवश्यकता कम हो जाती है। वास्तव में द्रुतगति से विकास प्राप्त करने के लिए अधिक उन्नत तकनीकी का प्रयोग होता है जिस कारण उद्योगों को व्यक्तियों की आवश्यकता एक ग्राहक के रूप में अधिक होती है। विशेषकर पश्चिमी देशों में जिन्होंने सस्ते श्रम के कारण उत्पादन को स्थानांतरित कर लिया था।

लेकिन यदि लोगों को अच्छे वेतन भत्ते नहीं मिलेंगे तो वे अच्छे ग्राहक कैसे बने रह सकेंगे, क्योंकि उनके पास खर्च करने के लिए बहुत कम पैसा होगा? यह पूंजीवाद का केन्द्रीय विरोधाभास था, जो कि स्वर्णिम वर्षों में हल नहीं किया गया। इसी ने 1970 के दशक के प्रारम्भ में संकट को बढ़ावा दिया था।

इन दशकों के संकट के परिणामस्वरूप सबसे ज्यादा रोजगार में कमी आई तथा सबसे विकसित पूंजीवादी देशों में भी लोग बेघर हो गए, उत्पादन में भी बहुत अधिक कमी आई, हालांकि तुलनात्मक रूप में यह मंदी काल के समान भीषण नहीं थी। इसके पश्चात् तेल संकट ने इस संकट को सर्वव्यापी संकट में परिवर्तित कर दिया था। 1973 में तेल उत्पादक देशों द्वारा तेल प्रतिषेध ने तेल निर्माता कम्पनियों ने ऊर्जा दामों को अत्यधिक बढ़ा दिया। 1973-75 तथा 1981-83 मंदी के वर्ष थे। 1973-74 के वर्षों में पूंजीवादी यूरोपीय देशों तथा अमेरिका में औद्योगिक उत्पादन दस प्रतिशत तक लुढक गया था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में

13% की कमी आई थी। इसी समय पर श्रमिक असंतोष बढ़ गया था, सामाजिक विद्रोह, नस्लवाद का विरोध, नारीवादी आन्दोलन तथा समलैंगिकता आदि फूट पड़े थे। ब्रिटेन में 1971 में पहली बार डाक हड़ताल हुई थी, इसके बाद 1972 में खदानों में हड़ताल हुई, पुनः 1974 में खदानों में हड़ताल हुई थी। जिसने टेड हीथ सरकार का गिरना सुनिश्चित किया, इस सरकार ने 1971 में औद्योगिक संबंध एक्ट के द्वारा श्रमिक समूह की शक्ति को सीमित व नियंत्रित करने का प्रयास किया था। 1960 के बाद के वर्षों में तथा 1970 के प्रारंम्भिक वर्षों में इटली, तथा फ्रांस में बड़ी-बड़ी हड़तालें हुई जिनमें विद्यार्थी, युवाओं तथा बाद में श्रमिक वर्ग भी इन हड़तालों में शामिल हुए थे।

पश्चिमी यूरोप में जो बेरोजगारी, 1960 के दशक में 1.5% थी, 1970 के दशक में बढ़कर 4.2% तथा 1980 के अन्त तक 9.2% औसत तक पहुंच गई थी। आप कुछ उदाहरणों के द्वारा सामान्य जीवन में कुछ आयामों के प्रति जानकार होंगे। जैसे टेलिकॉम क्षेत्र में विकास के कारण मोबाइल तथा इंटरनेट के आने से सरकारी टेलिकॉम तथा डाक विभाग के काम करने वाले लोगों की संख्या में उल्लेखनीय कमी आई थी। सेवा व्यवसायों के बढ़ने से इस कमी पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। इंग्लैण्ड में 400,000 लोग बेघर हो गए थे तथा एक अनुमान के अनुसार अकेले न्यूयॉर्क में 20,000 लोग गलियों में या रैनबसेरों में सो रहे थे। पूंजीवाद की ढांचागत परिस्थितियों ने इस स्थिति को और अधिक नुकसान पहुँचाया, बेरोजगारी बढ़ने के साथ-साथ दूसरी ओर समाज और अधिक आधुनिक बन रहा था। उपरोक्त कारणों से इन सभी देशों की विकास की प्रकृति पर प्रश्न उठा दिये थे क्योंकि भीषण असमानताएँ बढ़ी थी। पूंजीवादी देशों में एक छोटे से पूंजीपति वर्ग का अधिकांश देश की सम्पदा पर नियंत्रण था, जो आज भी हमारे देशों में भी देखा जा सकता है। इसे पूंजीवादी व्यवस्था के संकट के रूप में देखा जा सकता है।

सरकारें दबाव में थीं अपने कल्याणकारी कार्यों पर होने वाले खर्च, निवेश एवं उद्योगों को बचाने की राशि के बीच खर्च इतने अधिक बढ़ते रहे कि वे राजस्व आय से अधिक हो गए थे। अर्थव्यवस्था की अनियोजित प्रवृति के साथ, बाजार आधारित अर्थव्यवस्था चलाने की प्रवृति के कारण विभिन्न देशों में निवेश राष्ट्रीय सरकारों के नियंत्रण में नहीं थे। इन्होंने सामान्य पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में और हड़कम्प मचा दिया था। भूमंडलीकरण की शुरुआत ने राज्य की शक्तियों को कम किया, बाद के दशकों में कल्याणकारी कार्यों की कीमत पर राज्य पूंजी के अधीन बन गए थे।

लोकप्रिय कल्याण के स्थान पर सरकारों की पूंजी के हित में कार्य करने की विवशता पूंजीवादी समाज के तर्क से ही उपजी थी। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक लोकतान्त्रिक व्यवस्था में संकट उत्पन्न हो गया तथा इन देशों की पसन्द दक्षिणपंथी (Rightist) समाधानों की ओर होने लगी थी। 1980 के दशक की मंदी का समाधान नवउदारवाद की आर्थिक नीतियों के द्वारा हुआ था। इस कार्य में उन देशों तथा विकासशील देशों की गरीब जनता ने पूंजीवाद की समस्याओं का समाधान देने की कीमत चुकाई थी।

यद्यपि यह इस इकाई का प्रमुख विषय नहीं है लेकिन रोचक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि 1970 के दशक में समाजवादी राष्ट्र भी इन संकटों से परे नहीं थे। अपने तीव्र गति से वृद्धि तथा सामाजिक अधिकारों के ज्यादा बढ़ने के कारण, शिक्षा सभी के लिए मुफ्त थी, स्वास्थ्य सुरक्षा, विलासिता, सभी को समान अवसरों की उपलब्धता तथा कार्य स्थलों पर मुफ्त बाल केन्द्र (Creche) का अर्थ लोगों में समान वितरण था लेकिन इनका जीवन स्तर पूंजीवादी देशों की तुलना में कम था। यह सोवियत संघ के विकासशील देशों में दोहरे निवेश (जिसकी दरें पूंजीवादी देशों द्वारा किए निवेश काफी कम था) तथा अपनी सुरक्षा हेतु शस्त्रों की होड़ ने इन समाजवादी देशों में भी आर्थिक संकट पैदा कर दिया था। परन्तु समाजवादी राष्ट्र कभी भी पूंजीवादियों के द्वारा फैलाए गए उस प्रोपोगैंडा (Propaganda)

के साथ बराबरी नहीं कर पाए जो कि बड़े-बड़े निगमों द्वारा संचालित मीडिया के द्वारा पश्चिमी देशों के टेलिविजन चैनलों की पहुंच में था। समाजवादी देशों में इस संकट की प्रकृति इसलिए अलग तथा नाजुक थी।

लोगों के पास पैसा था क्यों उनकी ज्यादातर जरूरते राज्य द्वारा पूरी की जा रही थी। वह भी बहुत ही नगण्य कीमतों पर लेकिन पर्याप्त वस्तुओं का बाजार में अभाव था, लोगों के पास अपनी पसन्द की चीजें चयन करने का अवसर नहीं था और आवश्यक वस्तुओं की खरीदारों के लिए भी लम्बी लाइने लगती थी। इस प्रकार पूंजीवादी समाज में वस्तुओं की अधिकता थी परन्तु लोगों में क्रय शक्ति नहीं, वही समाजवादी राज्यों में लोगों के पास पैसा था लेकिन वस्तुओं का अभाव था। यद्यपि यहाँ के नागरिक विश्व बाजार अर्थव्यवस्था के उतार-चढ़ाव से पृथक थे परन्तु सोवियत संघ विश्व व्यापार में हिस्सा ले रहा था, विशेष रूप से विश्व अनाज बाजार में। विश्व की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संकट ने समाजवादी अर्थव्यवस्था को भी अछूता नहीं रह सकता था।

1991 में सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप में समाजवादी अर्थव्यवस्था इसी प्रकार ध्वस्त हो गई जिस प्रकार उनकी राजनीतिक व्यवस्था ध्वस्त हुई थी। बाजार आधारित चिकित्सा (Market Therapy) तथा पूंजीवाद में संक्रमण रातोंरात हो गया। यह एक प्रकार की जरूरी आकस्मिक चिकित्सा थी जिसके लिए लोग तैयार नहीं थे कि वो नहीं जानते थे कि वे कैसे अपने जीवन के लिए संघर्ष करेंगे। इसके बाद के दशकों में सोवियत संघ में अपराध, गरीबी, बेरोजगारी बढ़ी, जीवन प्रत्याशा, सुरक्षा रोजगार और पोषण में तेज गिरावट आई और इतनी असमानता का अनुभव हुआ जिसे कभी भी सोवियत संघ के नागरिकों ने नहीं देखा था। ये आर्थिक संकट अपने साथ अभूतपूर्व सामाजिक तथा नागरिक संकट भी लाए थे। समाजवादी देशों को भी संकट से गुजर रही पूंजीवादी व्यवस्था का हिस्सा बनना पड़ा जो कि दुर्भाग्य के रूप में ध्वस्त तथा सोवियत संघ टूटने के साथ पैदा हुआ था। रूस में 1990-91 में 17% सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में कमी तथा 1991-92 में 11% की कमी आई थी।

परन्तु इसी समय में चीन की अर्थव्यवस्था में उभार आया जैसे पूर्वी एशिया में हुआ था भारत में विकास वर्षों से योजनाबद्ध औद्योगिकरण नीतियों के परिणामस्वरूप हुआ था। भारी उद्योग तथा रेलवे इत्यादि की भी इसमें भूमिका थी जो सार्वजनिक क्षेत्र को दिया गया था। बैंक का राष्ट्रीयकरण, सोवियत संघ से आर्थिक सहायता, निजी क्षेत्र को भारी सब्सिडी, सरकार द्वारा ढांचागत उद्योगों, स्टील, कोयला तथा परिवहन पर खर्च करने से कुछ दशकों तक वृद्धि के साथ निजी पूंजीवाद को भी लाभ सुनिश्चित किया था। लेकिन 1970 तथा 1980 के दशकों में पुनः विकास दर गिरने लगी थी। इसका प्राथमिक कारण सुरक्षा पर भारी निवेश के कारण और पाकिस्तान तथा बांग्लादेश युद्धों तथा निजी औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा सरकार से अधिक छूटों की मांग के कारण पैदा हुआ था।

इन वर्षों में विकासशील देशों को अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों के आदेशों के अधीन संरचनात्मक समायोजन को मानना पड़ा। भारत ने भी अन्य लैटिन अमेरिकी, अफ्रीकी देशों की तरह, अमेरिका द्वारा अधिशासित विश्वबैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) द्वारा अपनी अर्थव्यवस्थाओं की जड़ता से निपटने के लिए में थोड़े समय के सुधार लाने हेतु ऋण लिया। इसलिए उसे भी इन संस्थाओं की अपेक्षित शर्तों के आगे सिर झुकाना पड़ा था, इससे देशों के स्वतन्त्र आर्थिक विकास तथा जनता के कल्याण में बाधाएं उत्पन्न हो गई थी।

ज्यादातर अफ्रीकी देशों की तरह लैटिन अमेरिका पहले ही भुगतान सन्तुलन ऋण संकट से गुजर रहा था, बहुत से अन्य देशों की तरह अफ्रीकी देश भी 1980 के दशक में

अत्याधिक मंदी तथा संकट में थे। संकट और तब बढ़ गया तथा जब लैटिन अमेरिकी देशों ने अपने ऋण भुगतानों से पुनः मना कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप पूंजीवादी व्यवस्था में प्रमुख संकट आ सकता था परन्तु बहुत से उन्नत देशों ने अनेक ऋणों को माफ कर दिया था। परन्तु इससे इन विकासशील देशों की समस्याओं का हल नहीं हुआ था। जिन देशों ने पूंजीवाद को अपनाया था उन देशों में गरीबी बढ़ी तथा नागरिकों के पोषण स्तरों में गिरावट आ रही थी। क्योंकि उन्हें अब भी उन शर्तों का पालन करना पड़ रहा था जो उन्होंने पहले स्वीकार की थी। वे देश अपने आर्थिक नीतियों में दिशा परिवर्तन भी नहीं कर सकते थे। दूसरी ओर उन्नत देशों को अभी भी 9% ब्याज की राशि मिल रही थी। जिससे इन उन्नत पूंजीवादी राष्ट्रों ने विकासशील देशों को अशक्त तथा अपना अधीनस्थ बना दिया था।

इन संकट के दशकों को एक तरफ विकसित पूंजीवादी देशों में असमानता बढ़ा दी थी तथा दूसरी तरफ पूंजीवादी उन्नत राष्ट्रों तथा विकासशील विश्व के बीच भी असमानताएं बढ़ा दी थी। इसके साथ ही पूर्व के समाजवादी देशों की दशा विकासशील देशों से भी अधिक दयनीय बना दी थी।

12.5 भूमण्डलीकरण और उसका असंतोष एवं विरोधाभास

इस संकट काल का सामना उन्नत पूंजीवादी देशों द्वारा कुछ इस प्रकार से किया गया था। पहले कि उन्होंने विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर अपने नियंत्रण को और अधिक गहरा व मजबूत बनाने के रूप में, दूसरा अपनी स्वयं की अर्थव्यवस्थाओं की पुनर्संरचना के रूप में, तीसरा विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं की भी पुनर्संरचना करने की कोशिश की।

ब्रिटेन की थैचर सरकार के दृढ निश्चय के द्वारा निजीकरण तथा जनसेवाओं में जिनमें कि रेलवे, डाकतार, टेलिग्राफ, स्टील, कोयला, गैस तथा स्वास्थ्य सेवाएं कम कर दी गई जैसा कि अमेरिका में रीगन सरकार ने किया था। मुक्त बाजार के साथ मजबूत राज्य के हस्तक्षेप ने पूरे विश्व के बाजार पर नियंत्रण किया गया; अपने घरेलू श्रम को वशीभूत किया और राज्य शक्ति को दमनकारी बनाया उसकी निगरानी बढ़ा दी गई तथा पुलिस का सैन्यकरण किया। थैचर के प्रधानमंत्री कार्यकाल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना 1984-85 में खदान मजदूरों के साथ उनकी लड़ाई थी। आटो उद्योग श्रमिकों की भी इसी प्रकार दमन तथा हार हुई। पूरे यूरोप में मजदूर यूनियनों पर निगरानी रखी गई तथा उन्होंने श्रमिकों और सामाजिक लोकतान्त्रिक पार्टियों को अपने अनुरूप बना लिया। अर्थव्यवस्थाओं की पुनर्संरचना हुई। उदाहरण के लिए 1970 के दशक में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था 70% उद्योग तथा निर्माण करती थी जब कि आज 70% से अधिक सेवाओं में कार्यरत हैं। श्रमिकों की दैनिक मजदूर के रूप में नियुक्ति, पेंशनों में कमी, राज्य के द्वारा गरीबों के घरों में कमी, श्रमिक संबंधों में लचीलापन सुधारों का मानक बन गया, और यह न केवल अमेरिका में बल्कि पूरे महाद्वीप में पूंजी द्वारा श्रमिकों पर आक्रमक नीति का हिस्सा था।

इसके साथ ही विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं को 'मुक्त' कर पुरस्कार के रूप में पेश किया। उन्नत पूंजीवादी देशों की तरफ से बहुत सारे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों जैसे नाफ्टा, विश्व व्यापार संगठन (WTO) तथा गैट (GATT) द्वारा उनके स्वयं के हित में व्यापार की शर्तों तथा नियमों को मोड़ा जा रहा था जो कि समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं के धराशायी होने के पश्चात् अब और अधिक आसान हो गया था। विडम्बना यह है इस को अर्थव्यवस्थाओं के भूमण्डलीकरण तथा उदारीकरण की प्रक्रिया कहा गया था। विकासशील देशों की सरकारों को बल पूर्वक अपनी अहर्ताए बदलने के लिए विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय

मौद्रिक कोष (IMF) के आदशों के द्वारा निर्देशित किया जा रहा था उन देशों के अपने नागरिकों की कल्याण की उपेक्षा की गई। इस स्तर पर इन देशों के उद्यमी पूंजीवादियों को यह ठीक भी लगा क्योंकि 'सुधारों' के नाम पर विकासशील देशों को दिए गए सभी ऋण सशर्त थे।

इन शर्तों के अधीन विकासशील देशों को अपने देश की अर्थव्यवस्थाओं को सुरक्षित करने के लिए निर्धारित 'व्यापार प्रतिबन्धों' को हटाना पड़ा, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए प्रमुख उद्योगों के लिए खोलना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक कानूनों में बदलाव लाना पड़ा जिससे मुनाफा कमाना सुगम हुआ और जिन्होंने श्रमिकों की संगठित होने और मोलभाव की क्षमता को समाप्त कर दिया। इन सुधारों के परिणामस्वरूप जनता पर टैक्सों का दबाव बहुत बढ़ गया था जबकि पूंजीपतियों को छूट दी जा रही थी। सरकारी सब्सिड़ी कम कर दी गई और सरकार ने कल्याणकारी कार्यों, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सार्वजनिक परिवहन आदि पर खर्च कम कर दिए। जनता की पोषण सम्बंधी आवश्यकताओं की बजाय निर्यात आवश्यकताएं हो गई। इसके अलावा बैंकिंग तथा बीमा में विदेशी पूंजी को प्रवेश दिया गया।

इसका दुष्प्रभाव विकासशील देशों में ज्यादातर लोगों के जीवन स्तर में गिरावट आना था, विनिर्माण में कमी, केवल सेवा क्षेत्र में थोड़ा सा रोजगार बढ़ा था लेकिन वह विनिर्माण में आई कमी की भरपाई नहीं कर सकता था। इसका अभिप्राय यह था कि अब ज्यादातर कामकाजी लोग अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत थे जहाँ पर उन्हें छंटनी से कोई सुरक्षा नहीं दी गई थी। दैनिक वेतन कर्मचारियों तथा श्रमसाध्य उत्पादन इकाइयाँ जो औद्योगीकरण से पहले के काल में होती थी पुनः विकासशील देशों की भूमण्डलीकृत अर्थव्यवस्थाओं में पनपने लगी थीं। यह सब बहुत अधिक गहन शोषण के साथ हो रहा था, घरेलू श्रम बढ़ गया था। इसका यह भी अर्थ था कि एक पराधीन तथा संकट से घिरी कृषि, बड़े ऋणों तथा गरीबी के परिणामस्वरूप भारत जैसे देशों में कृषकों की आत्महत्याएं होने लगी जिसका नकारात्मक प्रभाव रोजगार तथा समाज की परिधि पर स्थित लोगों की बदतर स्थिति के रूप में सामने आया। महिलाओं की स्थिति के अध्ययनों के अनुसार महिलाओं का संगठित क्षेत्रों से निष्कासन हुआ और वे अहितकारी तथा अधिक पिछड़े क्षेत्रों में कार्य करने लगी थी।

पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक 'बुलबुलों' के फूटने पर नई बाजार आधारित संसाधनों ने गरीबों की स्थिति को और खराब कर दिया। हालांकि भारत उस तात्कालिक वित्तीय संकट को किसी तरह टाल पाया जो इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में आया था। केवल चीन ही अपनी अर्थव्यवस्था को संभाल सका। उसने अपनी अर्थव्यवस्था के केवल कुछ ही क्षेत्रों में बाजार अर्थव्यवस्था को आने दिया था। परन्तु उन्होंने अधिकतर औद्योगिक उत्पादन तथा वित्त को अपने राज्य तथा सरकार के स्वामित्व के अधीन ही रखा था।

बोध प्रश्न 2

1) 1950-70 के काल के विकास की मुख्य विशषताओं की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) 1970 के पश्चात् पूंजीवाद के संकट के कारणों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

3) भूमण्डलीकरण के विरोधाभासों का विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

12.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन में आपने देखा की उस समय की पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में विश्व स्तर पर आवधिक संकट उत्पन्न हुए थे। अब आप ये भी समझ चुके होंगे कि इन संकटों की जड़ बाजार के तर्क तथा लाभ में अंतर्निहित थी जो कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में स्वाभाविक रूप से होते हैं। हम यह चर्चा भी कर चुके हैं कि शीत युद्धोत्तर विश्व अर्थव्यवस्था में उतार-चढाव के प्रमुख आयाम क्या थे तथा संकट काल को कैसे देखा गया तथा उसका समाधान कैसे किया गया था।

शायद आपको यह पढ़ कर आश्चर्य हुआ होगा कि क्या बहुसंख्यक का कल्याण पूंजीवाद के अन्तर्गत किया जा सकता है और क्या पूंजीवादी समाज जो पूंजी के हित से संचालित होता है कभी ऐसी राजनीतिक व्यवस्था को जन्म दे सकता है जो बहुसंख्यक के कल्याण के लिए कार्य करे। तब यह प्रश्न सामने आता है कि विकास किसके लिए? और वृद्धि किस उद्देश्य के लिए?

12.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 12.2 देखें।

2) भाग 12.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 12.4.2 देखें।

2) उपभाग 12.4.3 देखें।

3) भाग 12.5 देखें।